E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

श्लेष अलंकार

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

प्रकृति-

यह शब्दालंकार है। (शब्दालङ्कार का लक्षण है-'शब्दपरिवृत्त्यसहत्व' अर्थात् शब्द की परिवृत्ति (परिवर्तन) को न सह सकने का भाव। अर्थात् जो अलंकार शब्दविशेष की ही उपस्थिति में रहते हैं, उस शब्द का पर्याय रखते ही विनष्ट हो जाते हैं, शब्दालंकार कहे जाते हैं।)

व्युत्पत्ति-

श्लेष शब्द श्लिष् धातु से घञ् प्रत्यय के लगने से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है चिपकना, आलिंगन, संगम आदि। शब्द श्लेष में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिनके एकाधिक अर्थ होते हैं। इस अलंकार में एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं और वह शब्दाश्रित होता है। श्लिष्ट शब्द उसे कहते हैं, जो अनेकार्थक वाचक होता है।

इतिहास-

आचार्य भामह ने सर्वप्रथम श्लेष को अलंकाररूप में मान्यता दी थी, किन्तु उनके पूर्व भरतमुनि ने इसे गुण प्रकरण में स्थान देकर इसकी परिगणना गुणों में की थी।

लक्षण-

श्लेष अलंकार को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट ने कहा है-"अर्थ भेद होने से भिन्न-भिन्न शब्द एक साथ उच्चारण विषय के कारण जो एकरूप प्रतीत होते हैं, वह श्लेष अलङ्कार है और वह श्लेष अक्षर आदि के भेद से आठ प्रकार का होता है-

"वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद् भाषणस्पृशः।

श्लिष्यन्ती शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा"।।

आचार्य विश्वनाथ श्लेष अलंकार को परिभाषित करते हुए कहते हैं-"श्लिष्टैः पदैर्नेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते" अर्थात् श्लिष्ट पदों से अनेक अर्थों का अभिधान होने पर श्लेष अलंकार होता है।

स्पष्टीकरण-

क) अर्थभेद होने पर समानाकार शब्दों का एक साथ उच्चारण होने के कारण अपने भिन्न रूप का एक साथ मिल जाना श्लेष है।

ख) श्लेष में भिन्नार्थक शब्द प्रयुक्त होते हैं।

ग) आचार्य मम्मट समानाकार एवं भिन्नार्थक शब्दों के परस्पर मिलकर एक हो जाने को श्लेष मानते हैं।

घ) शब्दश्लेष में शब्दपरिवृत्तिसहत्व लागू नहीं होता अर्थात् शब्दश्लेषालंकार में शब्द का प्राधान्य होता है। जिस शब्द से चमत्कार उत्पन्न हो, यदि उसके बदले अन्य शब्द रख दिया जाए तो वहाँ उसका चमत्कार नष्ट हो जाता है।

वैशिष्ट्य-

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने काव्य में श्लेष का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए स्थान-स्थान पर इसकी प्रशस्ति की है। आचार्य दण्डी ने सभी वक्रोक्तियों या अलंकारों का शोभाधायक श्लेष को ममाना है। आचार्य उद्भट ने श्लेष की प्रबलता स्वीकार करते हुए बताया कि अन्य अलंकारों का साथ होने पर इसका प्राधान्य रहता है। आचार्य रुद्रट ने श्लेष के सुन्दर एवं उपयुक्त प्रयोग के लिए महाकवियों को जो निर्देश दिया है, उससे काव्य में इसके महत्त्व का परिज्ञान होता है। इनके अनुसार काव्यानुशासन या व्याकरणशास्त्र का गम्भीर अध्ययन, महाकवियों के प्रबन्धों का सम्यक् अनुशीलन, देशीय भाषाओं का ज्ञान तथा शब्दकोशों के अध्ययन के उपरान्त ही महाकवि को श्लेष की रचना में प्रवृत्त होना चाहिए। पण्डितराज जगन्नाथ ने बताया कि श्लेष वाणी के नूतन सौभाग्य का उद्भावक एवं उपमा की भाँति स्थान-स्थान पर सभी अलंकारों का अनुग्राहक होता है।

उदाहरण-

"पृथुकार्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेषपरिजनं देव।
विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममावयोः सदनम्"।।

अर्थात् हे राजन्! हमारा और आपका सदन इस समय एक जैसा हो रहा है। हमारा घर कैसा है? पृथुकों (बच्चों) के आर्तस्वरों (भूख के कारण उत्पन्न करुणक्रन्दनों) का पात्र। भू अर्थात् जमीन पर ही 'उषित' (सोये हुए) समस्त कुटुम्बीजनों वाला तथा बिलत्सकों (बिलों में रहने वाले चूहों) की धूलियों से ओतप्रोत। और आपका घर कैसा है? पृथु-कार्तस्वर-पात्रम् अर्थात् बड़े-बड़े स्वर्णनिर्मित बरतनों वाला। भूषित-निःशेषपरिजनम् अर्थात् विभूषित समस्त सेवकजनों वाला तथा विलसत्-करेणु-गहनम् अर्थात् शोभायमान हथिनियों से भरा-पूरा।

स्पष्टीकरण-

प्रस्तुत उदाहरण पदश्लेष का है क्योंकि यहाँ श्लेष पृथुक, भूषित तथा विलसत्क आदि पदों में है। श्लष के कारण ही यहाँ 'ब' तथा 'व' (बिलसत्-विलसत्) में अभेद कल्पित किया गया है।

भेद-

श्लेष अलंकार दो प्रकार का होता है- सभङ्गश्लेष और अभङ्गश्लेष। इनमें सभङ्गश्लेष में प्रकृति-प्रत्यय आदि की भिन्नता रहती है। इसीलिए इसे सभङ्गश्लेष कहते हैं। इसे आठ भेद होते हैं- वर्णश्लेष, पदश्लेष, लिङ्गश्लेष, भाषाश्लेष, प्रकृतिश्लेष, प्रत्ययश्लेष, विभक्तिश्लेष और वचनश्लेष। प्रकृति-प्रत्यय आदि का भेद न होने से श्लेष का नवम भेद अभङ्गश्लेष होता है।